Department of Philosophy
D. B. COLLEGE, JAYNAGAR, MADHUBANI (BIHAR)
(A Constituent unit of L. N. Mithila University K. Nagar, Darbhanga)
By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)

May 22, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290,
8271817619

CLASS :- B.A. PART – II (Subsi,)

Topic :- पुरुषार्थ

हिन्दू धर्म में **पुरुषार्थ** से तात्पर्य मानव के लक्ष्य या उद्देश्य से है ('पुरुषैर्थ्यते इति पुरुषार्थः')। पुरुषार्थ = पुरुष+अर्थ = अर्थात मानव को 'क्या' प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रायः मनुष्य के लिये वेदों में चार **पुरुषार्थों** का नाम लिया गया है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसलिए इन्हें 'पुरुषार्थचतुष्टय' भी कहते हैं। महर्षि मनु पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतिपादक हैं।

चार्वाक दर्शन केवल दो ही पुरुषार्थ को मान्यता देता है- अर्थ और काम। वह धर्म और मोक्ष को नहीं मानता। महर्षि वात्स्यायन भी मनु के पुरुषार्थ-चतुष्टय के समर्थक हैं किन्तु वे मोक्ष तथा परलोक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम पर आधारित सांसारिक जीवन को सर्वोपरि मानते हैं।

योगवासिष्ठ के अनुसार सद्जनो और शास्त्र के उपदेश अनुसार चित्त का विचरण ही पुरुषार्थ कहलाता है।| भारतीय संस्कृति में इन चारों पुरूषार्थो का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः इन पुरूषार्थो ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अद्भुत समन्वय स्थापित किया है । (आचार्य ललित) धर्म अर्थ काम ये तीनों पुरुषार्थ को अच्छी तरह कर लेने से ही मोक्ष की प्राप्ति सहज हो जाती है

धर्म

प्राचीन काल में ही भारतीय मनीषियों ने धर्म को वैज्ञानिक ढंग से समझने का प्रयत्न किया था। धर्म का विवेचन करते समय समझाया गया है कि धर्म वह है जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो-

यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (कणाद, वैशेषिकसूत्र, १.१.२)

'अभ्युदय' से लौकिक उन्नति का तथा 'निःश्रेयस' से पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण का बोध होता है। अर्थात जीवन के ऐहिक और पारलौकिक दोनों पक्षों से धर्म को जोड़ा गया था। धर्म की इससे अधिक उदार परिभाषा और क्या हो सकती है? धर्म शब्द का अर्थ अत्यन्त गहन और विशाल है। इसके अन्तर्गत मानव जीवन के उच्चतम विकास के साधनों और नियमों का समावेश होता है। [2]

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
May 22, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290,
8271817619

धर्म कोई उपासना पद्घति न होकर एक विराट और विलक्षण जीवन-पद्घति है। यह दिखावा नहीं, दर्शन है। यह प्रदर्शन नहीं, प्रयोग है। यह चिकित्सा है मनुष्य को आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्त कर सार्थक जीवन तक पहुँचाने की। यह स्वयं द्वारा स्वयं की खोज है। धर्म, ज्ञान और आचरण की खिड़की खोलता है। धर्म, आदमी को पशुता से मानवता की ओर प्रेरित करता है। अनुशासन के अनुसार चलना धर्म है। हृदय की पवित्रता ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है। धर्म का सार जीवन में संयम का होना है।

अर्थ

मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः । (कौटिल्यीय अर्थशास्त्र)

अर्थात जो भी विचार और क्रियाएं भौतिक जीवन से संबंधित है उन्हें 'अर्थ' की संज्ञा दी गयी है।

धर्म के बाद दूसरा स्थान अर्थ का है। अर्थ के बिना, धन के बिना संसार का कार्य चल ही नहीं सकता। जीवन की प्रगति का आधार ही धन है। उद्योग-धंधे, व्यापार, कृषि आदि सभी कार्यो के निमित्त धन की आवश्यकता होती है। यही नहीं, धार्मिक कार्यो, प्रचार, अनुष्ठान आदि सभी धन के बल पर ही चलते हैं। अर्थोपार्जन मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। इसी से वह प्रकृति की विपुल संपदा का अपने और सारे समाज के लिए प्रयोग भी कर सकता है और उसे संवर्द्धित व संपुष्ट भी। पर इसके लिए धर्माचरण का ठोस आधार आवश्यक है। धर्म से विमुख होकर अर्थोपार्जन में संलग्न मनुष्य एक ओर तो प्राकृतिक सम्पदा का विवेकहीन दोहन करके संसार के पर्यावरण संतुलत को नष्ट करता है और दूसरी ओर अपने क्षणिक लाभ से दिग्भ्रमित होकर अपने व समाज के लिए अनेकानेक रोगों व कष्टों को जन्म देता है। धर्म ने ही हमें यह मार्ग सुझाया है कि प्रकृति से, समाज से हमने जितना लिया है, अर्थोपार्जन करते हुए उससे अधिक वापस करने को सदैव प्रयासरत रहें।

शास्त्रों ने अर्थ को मानव की सुख-सुविधाओं का मूल माना है। धर्म का भी मूल, अर्थ है (चाणक्यसूत्र १/२) । सुख प्राप्त करने के लिए सभी अर्थ की कामना करते हैं। इसलिए आचार्य कौटिल्य त्रिवर्ग में अर्थ को प्रधान मानते हुए इसे धर्म और काम का मूल कहा है। भूमि, धन, पशु, मित्र, विद्या, कला व कृषि सभी अर्थ की श्रेणी में आते हैं। इनकी संख्या निश्चित करना सम्भव नहीं है क्योंकि यह मानव जीवन की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। मनुष्य स्वभावतः कामना प्रधान होता है, यह कहना भी गलत नहीं होगा वह कामनामय होता है। इन सभी कामनाओं की पूर्ति का एक मात्र साधन अर्थ है। आचार्य वात्स्यायन 'अर्थ' को परिभाषित

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
May 22, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290,
8271817619

करते हुए विद्या, सोना, चांदी, धन, धान्य गृहस्थी का सामान, मित्र का अर्जन एवं जो कुछ प्राप्त हुआ है या अर्जित हुआ है उसका वर्धन सब अर्थ है। (*विद्या भूमि हिरण्य पशुधान्य भाण्डोपस्कर मित्त्रादि नामार्जन मर्जितस्य विवर्धनमर्थः।*)[3]

काम

महर्षि वात्स्यायन के अनुसार,

श्रोत्रत्ववच्क्षुर्जिह्वा घ्राणानामात्म संयुक्ते नमन साधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्जानुकूल्यतः प्रवृतिः कामः।
स्पर्शविशेषविषयात्तवस्यामिमानिकसुखानुविद्धा।
फलवत्यर्थप्रलीतिःप्राधान्यात्कामःतंकामसूत्रान्नगरिकजनसमवियच्च प्रतिपद्येत।
एषां समवाये पूर्वः पूर्वो मरियान् अर्थस्व राजः। तन्मूलवाल्लोकयात्रायाः। वेश्यायाश्वेतित्रिवर्गप्रतिपत्तिः।

अर्थात् काम ज्ञान के माध्यमों का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि आत्मा से संयुक्त मन से अधिष्ठित तत्व, चक्षु, जिव्हा, तथा घ्राण तथा इन्द्रियों के साथ अपने अपने विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गंध में अनुकूल रूप से प्रवृत्ति 'काम' है। इसके अलावा स्पर्श से प्राप्त

अभिमानिक सुख के साथ अनुबद्ध फलव्रत अर्थ प्रीतति काम कहलाता है। इसके अलावा अर्थ, धर्म तथा काम की तुलनात्मक श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि त्रिवर्ग समुदाय में पर से पूर्व श्रेष्ठ है। काम से श्रेष्ठ अर्थ है तथा अर्थ से श्रेष्ठ धर्म है। परन्तु व्यक्ति व्यक्ति के अनुसार यह अलग-अलग होता है। माध्वाचार्य के अनुसार विषयभेद के अनुसार काम दो प्रकार का होता है। इनमें से प्रथम को सामान्य काम कहते हैं। जब आत्मा की शाब्दिक विषयों के भोगने की इच्छा होती है तो उस समय आत्मा का प्रयत्न गुण उत्पन्न होता है। अर्थात आत्मा सर्वप्रथम मन से संयुक्त होती है तथा मन विषयों से। स्रोत, त्वच, चक्षु, जिव्हा तथा घ्राण इन्द्रिय की क्रमशः स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में प्रवृत्त होते हैं। काम की इस प्रकृति में न्याय वैशेषिक मत अधिक झलकता है। इसके अनुसार शब्दादि विषयणी बुद्धि ही विषयों के भोग के स्वभाव वाली बुद्धि ही विषयों के भोग वाली स्वभाव वाली होने के कारण उपचार से कम कही जाती है। अर्थात् आत्मा बुद्धि के द्वारा विषयों को भोगता हुआ सुख को अनुभव करता है। जो सुख है, सामान्य रूप से वही काम है।

मोक्ष

आत्मा को अमर कहा गया है। यह एक नित्य अनादि तत्व है जो बंधन अथवा मुक्ति (मोक्ष) की अवस्था में रहती है। बद्ध अवस्था में इसे अपने कर्मों के अनुसार इसी जन्म अथवा अगले जन्मों में कर्मफल भोगने पड़ते हैं। मनुष्य के अलावा सभी शरीर मात्र भोग योनि हैं, मानव शरीर कर्म योनि है। योगी सद्गुरु के मार्गनिर्देशन में 'विकर्म' द्वारा अपने शुभ-अशुभ कर्मों से ऊपर उठ जाता है और शरीर रहते ही परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है। इसे ही योग (आत्मा एवं परमात्मा का मिलन) कहा गया है। अब वह अकर्म की स्थिति में है और इस शरीर में प्राप्त प्रारब्ध भोग को समाप्त कर लेने के बाद वह अपने शरीर से विदेहमुक्त हो जाता है। उसे अब नया जन्म नहीं लेना पड़ता, वह बंधन से मुक्त हो जाता है। मोक्ष को प्राप्त कर लेना ही आत्मा का मुख्य उद्देश्य है जो कि मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
Department of Philosophy
D. B. College jainagar
Mobile 8210837290
Whatsapp 8271817619
E-mail Id: kumar999sonu@gmail.com